जैव विकासः भविष्य की राहें

माधव गाडगिल

1. हमारी चंचल धरती माता

भारत के गोंडवाना में पाए गए जीवाश्म दर्शाते हैं कि हमारी भारतभूमि एक समय में दक्षिणी गोलार्ध में स्थित एक विशाल गोंडवाना महाद्वीप का भाग थी।

भारत के दक्षिणी राज्यों में फैली हुई विशाल काली चट्टानें संसार के इतिहास में घटी एक विशेष घटना का परिणाम हैं। इस चट्टान के उपजने के समय भारतीय महाद्वीप दक्षिणी गोलार्ध में हिन्द महासागर से एशिया महाद्वीप की ओर खिसक रहा था। खिसकते-खिसकते यह महाद्वीप साढ़े छह करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी के बहुत पतले कवच वाले भाग से टकराया जिसके कारण ज्वालामुखी का 'न भूतो न भविष्यति' नुमा भयानक विस्फोट हुआ। इसमें से उफनकर बाहर आए लावा से यह काली चट्टान बनी। यह रोचक इतिहास अभी-अभी, यानी पिछले पचास वर्षों में ही उजागर हुआ है।

जिस युरोप में आधुनिक विज्ञान की उन्नति हुई है वहां पंद्रहवीं सदी तक लोगों का दृढ़ विश्वास था कि पृथ्वी पूरे ब्रह्मांड का केन्द्र बिन्दु है, उसकी आयु मात्र चंद हज़ार वर्ष है और वह ऐसी चराचर सृष्टि से सजी हुई है जो कभी बदलती नहीं है। कॉपर्निकस ने यह दिखाया था कि पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमने वाला एक छोटा-सा ग्रह मात्र है। इससे उक्त धारणा को करारा झटका लगा और नए विचारों की राह खुली।

फिर भूगर्भशास्त्रियों ने दर्शाया कि पृथ्वी भी बदलती रहती है, उस पर स्थित पर्वत चूर-चूर होते रहते हैं, समुद्र गाद से भर जाते हैं, धरती ऊपर उठ जाती है, और यह सब इतनी धीमी गति से होता है कि पृथ्वी की आयु हज़ारों नहीं बल्कि करोड़ों और शायद अरबों वर्ष होगी। इससे प्रेरित हो कर डार्विन ने उन्नीसवीं सदी में यह दिखा दिया कि केवल भूमि और सागर ही नहीं, जीवजगत भी परिवर्तनशील है। डार्विन के काम के परिणामस्वरूप यह समझ में आने लगा कि जीवाश्म प्राचीन जीवधारियों के अवशेष हैं। किंतु जीवाश्मों को लेकर अभी भी कुछ पहेलियां मौजूद थीं।

मध्य भारत के गोंडवाना में पाए गए ग्लॉसोप्टेरिस नामक पर्णांग (फर्न) के जीवाश्म ऑस्ट्रेलिया, अन्टार्कटिका, भारत, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका, इन पांचों महाद्वीपों पर मिल रहे थे। वहीं लिस्ट्रोसॉरस नामक सरीसृप के जीवाश्म अन्टार्कटिका, भारत और अफ्रीका महाद्वीपों में ही मिल रहे थे। यह कैसे होता है? अल्फ्रेड वेगेनर नामक जलवायु वैज्ञानिक ने भूगर्भ विज्ञान की ओर नई दृष्टि से देखते हुए यह समझाया कि पृथ्वी पर स्थित भूखंड चंचल हैं। ऐसा नहीं है कि वे केवल बिखरते या ऊपर उठते हैं, जैसा कि पहले माना जाता था। उनका भ्रमण चलता रहता है, वे टूटते रहते हैं, जुड़ते रहते हैं। अब इस तर्क को मान लिया गया है कि पैंतालीस करोड़ वर्ष पहले जब जीवजगत समुद्र से बाहर आया तब दक्षिणी गोलार्ध में भारत, दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका और अन्टार्कटिका महाद्वीप एक-दूसरे से चिपके हुए थे और इस विशाल प्रदेश को अब गोंडवानालैंड नाम

ग्लॉसोप्टेरिस का जीवाश्म

दिया गया है। उत्तरी गोलार्ध में भी लोरेशिया नामक विशाल महाद्वीप था।

इन महाद्वीपों की ज़मीन पर पदार्पण करने वाला जीवजगत धीरे-धीरे विकसित होता रहा। पहले पर्णांगों के और फिर नग्नबीजी वनस्पतियों (जिम्नोस्पर्म) के जंगल फले-फूले। यही कारण है कि ग्लॉसोप्टेरिस के जीवाश्म पांचों महाद्वीपों पर पाए जाते हैं। जंगलरूपी इस भोजन के भंडार को चट करने के लिए कीटों का विकास हुआ। कीटों को खाने के लिए मेंढकों के पूर्वज विकसित हुए। चूंकि प्रकृति का पहिया बहुत धीरे-धीरे घूमता है, मेंढकों के पूर्वजों को पृथ्वी पर आने में दस करोड़ वर्ष लग गए। इसके पांच करोड़ वर्ष बाद मेंढकों का शिकार करने वाले सांपों के पूर्वज विकसित हुए। इसके दस करोड़ वर्ष बाद छछूंदर जैसे छोटे कीटभक्षक स्तनधारी जंतुओं का विकास हुआ।

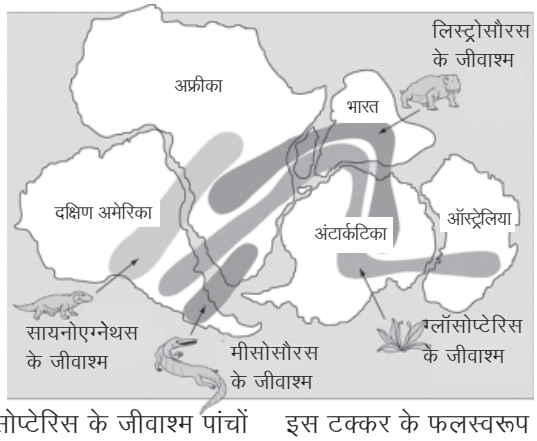

बीस करोड़ वर्ष पहले की इस अवधि में वनस्पति अपने परागण के लिए हवा और पानी पर निर्भर थे क्योंकि रंग-बिरंगे फूलों और तितलियों का युग अभी शुरू नहीं हुआ था। इन परिस्थितियों में पंद्रह करोड़ वर्ष पहले भारत गोंडवानालैंड से अलग हो कर धीरे-धीरे उत्तर की ओर खिसकने लगा था। यह उत्तर दिशा की यात्रा लगभग दस करोड़ वर्ष तक चलती रही। टूटते समय ज़मीन ऊपर की ओर उठ गई और पश्चिमी घाट व समुद्र किनारे की पट्टी बन गई। इस यात्रा के बीच में फूलधारी वनस्पति पृथ्वी के महाद्वीपों में फलने-फूलने लगी और उनके साथ ही डायनासौर ने इन महाद्वीपों पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

साढ़े छह करोड़ वर्ष पहले भारी उथल-पुथल हुई। पृथ्वी के पतले आवरण से भूखंड टकराने के कारण ज्वालामुखी भड़क उठे और ठीक इसी समय एक विशाल उल्कापिंड पृथ्वी से टकराया। धूल और राख से पूरा वातावरण भर गया और पृथ्वी ठंड से ठिठुर गई। इस हाहाकार में डायनासौर का सफाया हो गया। इस खाली स्थान का फायदा उठा कर स्तनधारियों और पक्षियों की संख्या तेज़ी से बढ़ गई।

पृथ्वी के जीवजगत का इस प्रकार कायापलट होते समय भारत एक महासागर में एक द्वीप था और इन सब परिवर्तनों से बचा हुआ था। सरकते-सरकते हमारा भूभाग आकर एशिया से टकरा गया। इस टक्कर के फलस्वरूप हिमालय धीरे-धीरे ऊंचा होता गया। अन्यत्र विकसित हुई फूलधारी वनस्पतियों, तितलियों, पक्षियों और पशुओं को भारत में आने का रास्ता खुल गया। भारत के नए विकसित हुए तीन प्रदेशों में बहुत वर्षा होने लगी और यहां जीवजगत बहुत फला-फूला। ये तीन प्रदेश थेः अंडमान-निकोबार द्वीप समूह, पश्चिमी घाट और पूर्वी हिमालय। इसमें से पश्चिमी घाट एक प्रकार से हरियाली का टापू है। इसके विपरीत, पूर्वी हिमालय दक्षिण-पूर्व एशिया के विस्तृत वनों से जुड़ा हुआ है। इस कारण दक्षिण-पूर्व एशिया के जीवजगत का वैभव पूर्वी हिमालय को भी मिल गया है। केवल वियतनाम तक के दक्षिण-पूर्व एशिया को ही देखें तो भी इस प्रदेश में पश्चिमी घाट की तुलना में तीन गुना अधिक फूलधारी वनस्पति प्रजातियां और दुगनी से भी अधिक स्तनधारी व पक्षी प्रजातियां हैं।

भारत के लिए ये तीनों जीव समूह (फूलधारी वनस्पति, स्तनधारी जंतु और पक्षी) तुलनात्मक रूप से नवागंतुक हैं, पिछले पांच करोड़ वर्ष में भारत पहुंचे हैं। इसके विपरीत, सांप, छिपकलियां, मेंढक प्राचीन समूह हैं। उनके पूर्वज पंद्रह करोड़ वर्षों से, जब भारत दक्षिणी गोलार्ध में था, हमारी भूमि पर बसे हुए हैं। इसीलिए पूर्वी हिमालय में इन समूहों की प्रजातियां चाहे अधिक हों, किंतु पश्चिमी घाट की तुलना में केवल सवा-डेढ़ गुनी ही हैं।

पश्चिमी घाट पर पाए जाने वाले वृक्ष-मेंढकों (ट्री फ्रॉग्ज़) की पैंतीस प्रजातियों में से उन्नतीस केवल सह्याद्री पर्वत पर पाई जाती हैं। मेंढकों के बिना टांग वाले सम्बंधियों (जिम्नोफियोना समूह) की बाईस प्रजातियों में से बीस इसी

क्षेत्र में पाई जाती हैं। बांडा नामक सर्प समूह, जो मिट्टी के नीचे छिपे रहते हैं, की सभी पैंतालीस प्रजातियां पश्चिमी घाट और श्रीलंका में पाई जाती हैं, और इनमें से चौंतीस केवल सह्याद्री पर्वतों में पाई जाती हैं। अर्वाचीन फूलधारी वनस्पतियों में गुलतेवड़ी (बाल्सम) की छियासी में से छियत्तर प्रजातियां केवल सह्याद्री पर पाई जाती हैं। सह्याद्री की जैव विविधता चाहे हिमालय की तुलना में कम हो, किंतु यहां ऐसी हज़ारों प्रजातियां हैं जो केवल भारत में ही पाई जाती हैं। इसके उलट, हिमालय में शुद्ध रूप से भारतीय प्रजातियां न के बराबर हैं क्योंकि अपना हिमालय पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, चीन, म्यांमार आदि देशों से जुड़ा हुआ है। पक्षियों की केवल तिरपन प्रजातियां ऐसी हैं जो केवल भारत में ही पाई जाती हैं। इनमें से सत्रह अंडमान-निकोबार में हैं, चौदह केवल पश्चिमी घाट में पाई जाती हैं। इसकी तुलना में तिरपन में से केवल चार प्रजातियां हिमालय में सीमित हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

2. नीलगगन में उड़ते पंछी

आकाश में उड़ने वाले पक्षी ध्रुव तारे को तो पहचानते ही हैं, जैव विकास के दौरान उनके मस्तिष्क में एक दिशासूचक यंत्र भी फिट कर दिया गया है।

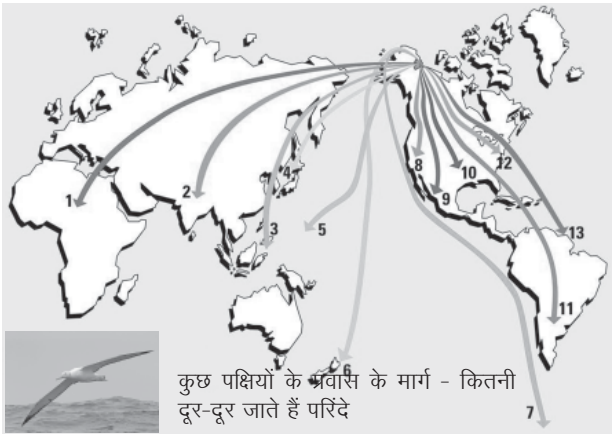

कुछ पक्षियों के आवास के मार्ग - कितनी दूर-दूर जाते हैं परिंदे

पक्षियों की खासियत है उनका घुमंतू जीवन। हमारे परिचित तोता और मैना एक दिन में तीस-चालीस किलोमीटर का सफर आसानी से कर लेते हैं, वहीं अल्बेट्रॉस नामक बड़े पंखों वाले समुद्री पक्षी हज़ार-हज़ार किलोमीटर तक की दूरी तय कर लेते हैं। टिटहरी का एक छोटा रिश्तेदार (बार-हेडेड गॉडविट) अलास्का में प्रजनन करने के बाद वहीं अपने बच्चों का पालन-पोषण करता है और फिर न्यूज़ीलैण्ड तक की ग्यारह हज़ार किलोमीटर की दूरी बिना कहीं रुके तय कर लेता है। किंतु इस यायावरी के लिए ज़रूरी है कि शरीर में पर्याप्त ताकत हो, जोशीला गरम खून हो।

वैसे तो शार्क मछलियों के शरीर में भी गरम खून होता है, किंतु उसका तापमान ऊपर-नीचे होता रहता है। आज की तारीख में केवल पक्षियों और स्तनधारियों का खून ही लगातार एक ही तापमान पर बना रहता है। लगभग तीस-बत्तीस करोड़ वर्ष पहले सायनॉप्सिड पूर्वजों से डायनासौर के साथ-साथ पक्षी भी विकसित हुए। इससे यह अनुमान लगाया गया है कि डायनासौरों का खून भी गरम रहा होगा। गरम खून के कारण शरीर का जोश बढ़ने के कई फायदे हैं, किंतु इसके कई नुकसान भी हैं। एक नुकसान तो यह है कि इन जंतुओं को बड़ी मात्रा में पोषण की आवश्यकता होती है। केवल जीवित रहने भर के लिए हाथियों को प्रति दिन पंद्रह-पंद्रह घंटे चरते रहना पड़ता है।

साढ़े छह करोड़ वर्ष पहले भारत के दक्षिणी भाग में ज्वालामुखी का भयानक विस्फोट हुआ था और उसी समय एक विशाल उल्कापिंड पृथ्वी से टकराया था। इसके फलस्वरूप इतनी धूल और धुआं उड़ा कि सारा संसार लम्बे समय तक अंधेरे में डूबा रहा और पृथ्वी पर हिमयुग आ गया। इसके चलते गरम खून वाले जीवधारियों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। सभी डायनासौर तो नष्ट हो गए, किंतु पक्षी और स्तनधारी किसी तरह बचे रहे। हज़ारों वर्षों की बर्फीली रात समाप्त होने पर पक्षियों और स्तनधारियों की पौबारह हो गई। उनसे स्पर्धा करने वाले और उनका शिकार करने वाले डायनासौर तो नष्ट हो गए थे और उन्हें

नए-नए आहार व निवास स्थान उपलब्ध हो गए थे। आहार और निवास स्थानों की विविधता के चलते पक्षियों और स्तनधारियों की विविधता भी बहुत फली-फूली।

भटतीतर

अपनी तेज़ गति के कारण पक्षी कई बिखरे हुए संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं जो केवल कुछ विशिष्ट ऋतुओं में ही उपलब्ध होते हैं। धीमी गति से चलने वाले जंतुओं के लिए इनके सहारे जीवित रहना असंभव होता है। समुद्र पर उड़ने वाले अल्बेट्रॉस पक्षी समुद्र में दूर-दूर तक बिखरी मछलियों और झींगों को खोजते रहते हैं। इसके लिए उन्हें एक दिन में सैकड़ों किलोमीटर तक का सफर करना पड़ता है। इस उड़ान के लिए वे हवा की धाराओं का उपयोग बखूबी कर लेते हैं। रेगिस्तान में रहने वाले भटतीतर (*Pterocles Indicus*) घास के बिलकुल सूखे बीज खा कर अपना पेट भरते हैं। इसके फलस्वरूप उन्हें बहुत तेज़ प्यास लगती है। चूंकि रेगिस्तान में पानी के स्रोत बहुत सीमित होते हैं, ये पक्षी हज़ारों की संख्या में सुबह-शाम साठ किलोमीटर तक की दूरी तय करके पानी के स्रोत तक पहुंचते हैं, और फिर उतनी ही दूरी तय करते हुए भोजन और रैनबसेरा खोजने लगते हैं। हवा में उड़ने वाले कीटों का शिकार करने वाले बतासी (स्विफ्ट) जब सुबह उड़ना शुरू करते हैं तो रात में अपने बसेरे पर लौट कर ही विश्राम करते हैं। चपके नामक पक्षी (नाईटजार) रात में उड़ने वाले कीड़ों का शिकार करते हैं।

पक्षियों की अन्य प्रजातियां मौसम के अनुसार भटकती रहती हैं। बगुले, चमचा बाजा (स्पूनबिल), ढोक (स्टोर्क) आदि जलीय पक्षी यह ढूंढते रहते हैं कि किस तालाब, नाले या नदी में पानी है। इसके विपरीत, पीली चोंच वाली टिटहरी (ज़र्दी) और नुकरी (इंडियन कोर्सर) सूखे स्थान खोजते रहते हैं। पहाड़ी धनेष और बड़ा अबलख धनेष (हॉर्नबिल) इस तलाश में रहते हैं कि जंगल में किस जगह फल पक गए हैं। हिमालय में रहने वाले कौए, बसंता, तीतर वगैरह ठंड के मौसम में तलहटी की ओर उतर आते हैं और गर्मियों में वापस पहाड़ों की ऊंचाइयों की ओर लौट जाते हैं।

किंतु असली दूर के राही तो वे पक्षी हैं जो गर्मियों में ठंडे इलाकों में पहुंच कर बच्चों को जन्म देते हैं, और उनका लालन-पालन करने के बाद ठंडा मौसम आने पर फिर गर्म क्षेत्रों में पहुंच जाते हैं। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध का काफी बड़ा भाग ज़मीन के रूप में है तो दक्षिणी गोलार्ध का बड़ा हिस्सा पानी के नीचे है। इसलिए हज़ारों पक्षी प्रजातियां मार्च-अप्रैल से सितम्बर की अवधि में एशिया, युरोप और उत्तरी अमेरिका महाद्वीपों के उत्तरी भागों में या फिर हिमालय जैसी पर्वत श्रृंखलाओं के ऊंचे और ठंडे स्थानों में बच्चों की परवरिश करती हैं और शेष महीनों में इन महाद्वीपों के दक्षिणी इलाकों या अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया महाद्वीपों में बिताती हैं। ध्रुवीय इलाकों के निवासी आर्क्टिक टर्न नामक पक्षी गर्मी के मौसम में अमेरिका, युरोप और एशिया महाद्वीपों के उत्तरी ध्रुव के आसपास के इलाकों में बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। ठंड का मौसम आते ही वे बीस हज़ार किलोमीटर दूर स्थित अन्टार्कटिका महाद्वीप की ओर चल पड़ते हैं।

सीधी रेखा में सफर न करते हुए ये पक्षी हवा की धाराओं का फायदा उठाते हुए वास्तव में तीस-चालीस हज़ार किलोमीटर की दूरी तय करते हैं। दक्षिणी गोलार्ध की गर्मियों में वहां के समुद्री जीवों की दावत खा कर फिर उत्तरी ध्रुव की ओर उड़ चलते हैं। अन्य किसी भी जंतु से अधिक समय सूर्य के प्रकाश में बिताने वाले ये पक्षी औसतन बीस वर्ष के अपने जीवनकाल में पच्चीस लाख किलोमीटर की यात्रा कर लेते हैं।

जब मैं स्कूल में पढ़ता था तब हमारे घर के बगीचे में हरियाली के गीले हिस्से में एक खंजन (धोबन पक्षी, वैगटेल) प्रति वर्ष नियमित रूप से आया करता था। वह लगभग दो महीने हमारे साथ बिता कर गायब हो जाता था। अप्रैल और

अगस्त के बीच की अवधि में वह युरोप और एशिया की उत्तरी सीमा पर स्वीडन से ले कर साइबेरिया तक के इलाके में कहीं किसी नदी के किनारे बिल बना कर उसमें अपने बच्चों को बड़ा करने के बाद ठंड का मौसम आते ही गर्मी और भोजन की तलाश में फिर भारत की ओर उड़ान भरता था। भारत में अपने पसंदीदा निर्धारित स्थान पर निर्धारित दिनों तक रह कर गर्मियों की शुरुआत में वह फिर उत्तर की ओर चल पड़ता था। उसके पैर में छल्ला न होने के कारण निश्चित रूप से कहना कठिन है, किंतु कम से कम सात-आठ वर्षों तक वही खंजन हमारे बगीचे में आता रहा होगा। 1962 से 1964 के बीच केरल में पकड़े गए और पैरों में छल्ला पहनाए गए ऐसे खंजन चार से सोलह महीनों के बीच चार हज़ार किलोमीटर दूर स्थित मध्य एशिया के कज़ाकिस्तान और किर्गिस्तान में पाए गए थे।

प्रवासी पक्षियों को पकड़ कर उनके पैरों में बहुत हल्के छल्ले पहना कर छोड़ दिया जाता है। इन छल्लों पर उस स्थान का नाम जहां वे पकड़े गए थे, छल्ला पहनाने वाली संस्था का नाम और पता, और छल्ला पहनाने की तारीख लिखे होते हैं। जब ये पक्षी किसी दूरस्थ स्थान पर दोबारा पकड़े जाते हैं तब उस स्थान के वैज्ञानिक छल्ला पहनाने वाली संस्था को इसकी सूचना देते हैं। इस तरीके से सैकड़ों प्रवासी पक्षी प्रजातियों के गरम और ठंडे इलाकों के ठिकानों के बारे में पता चला है।

ये पक्षी इतनी लम्बी यात्राएं सटीक ढंग से कैसे कर लेते हैं? उन्हें दिशा का ज्ञान कैसे होता है? वे किसी शहर के एक घर के बगीचे में प्रति वर्ष अचूक ढंग से कैसे पहुंच सकते हैं? पक्षियों की देखने की क्षमता हमसे कई गुना अधिक होती है। इसके अलावा उन्हें प्रकाश की तरंगों की आवृत्ति और ध्रुवित (पोलेराइज़्ड) प्रकाश की समझ होती है। यदि सूर्य बादलों से पूरी तरह ढंका हो, या अस्त हो चुका हो, तो भी उसकी दिशा ध्रुवित प्रकाश से पहचानी जा सकती है। रात में उड़ते समय उत्तर दिशा पहचानने के लिए पक्षी ध्रुव तारे की मदद लेते हैं जिसे वे जन्म से ही पहचानते हैं। कमाल की बात यह है कि पक्षी चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा व उसकी तीव्रता को भी पहचानते हैं, जैसे किसी दिक्सूचक यंत्र में होता है। पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा स्थान-स्थान पर बदलती रहती है। पूरे संसार की चट्टानों में उस समय के चुम्बकीय क्षेत्र के निशान होते हैं जब उनका निर्माण हुआ था। ज्वालामुखी के विस्फोट से भारत के दक्षिणी पठार पर स्थित काली चट्टानें जब बनी थीं उस समय भारत दक्षिणी गोलार्ध में था। उसका चुम्बकीय क्षेत्र और उसकी तीव्रता उस समय की परिस्थिति के अनुसार निर्धारित हुई थी और यह भारत की दूसरी चट्टानों से भिन्न है। इसके अलावा, चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता में स्थानीय चट्टानों और रासायनिक घटकों के कारण सूक्ष्म अंतर होते हैं। यही कारण है कि पूरे संसार की चट्टानों के चुम्बकीय क्षेत्र व उसकी दिशा अलग-अलग होते हैं। इन्हें भांपते हुए पक्षी हज़ारों किलोमीटर की यात्रा करके हर वर्ष उसी स्थान पर पहुंच जाते हैं। यही है जैव विकास की अजीब जादूगरी!

(स्रोत फीचर्स)

3. बंदरों की लीला अनोखी

उन्नत जंतुओं की दुनिया में जीन्स के अलावा संज्ञान क्षमता और औज़ार/हथियार ही जैव विकास की अगली दिशा निर्धारित करने वाले हैं।

जैव विकास की धारा सर्वसमावेशी है। इसकी रीत ऐसी नहीं है कि केवल अधिक से अधिक उन्नत जीवधारी बनते जाएं और पहले के साधारण जीवधारी नष्ट होते जाएं। बैक्टीरिया, फफूंद, कीड़े-मकोड़े जैसे कई साधारण जीव आज भी बहुत समर्थ और सफल बने हुए हैं। अत्यंत सरल

शरीर रचना वाले सायनोबैक्टीरिया तो अतिपुरातन काल से आज तक न केवल टिके हुए हैं, बल्कि फल-फूल रहे हैं।

किंतु जैव विकास की धारा में भी कुछ प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। कीटों जैसे प्राचीन जीवधारियों की तुलना में स्तनधारी जंतुओं जैसे आधुनिक जीवधारी कुछ बातों में निश्चित रूप से अधिक उन्नत हैं। उनकी शरीर रचना, उनके व्यवहार, उनकी कार्यिकी अधिक जटिल, उलझी हुई और मिश्रित हैं। उनके व्यवहार में जन्मजात अंश कम है और एक-दूसरे से सीखा हुआ, कभी-कभी बिलकुल नए सिरे से गढ़ा हुआ अंश बहुत अधिक है। आधुनिक सूचना विज्ञान के शब्दों में स्तनधारी जानकारी से ठसाठस भरे हुए हैं, उनमें बोध अधिक है।

क्या इन उन्नत जंतुओं में आत्मज्ञान यानी स्वयं को पहचानने की क्षमता है? इसका उत्तर खोजने के लिए मनोवैज्ञानिक लोग जंतुओं को दर्पण दिखाते हुए इस बात की जांच करते हैं कि क्या इन जंतुओं को यह एहसास होता है कि वे दर्पण में स्वयं की छवि देख रहे हैं?

अब यह पता चला है कि कई प्रजातियों के बंदरों, हाथियों और डॉल्फिनों में आत्मभान होता है। अपने देश में पाए जाने वाले लाल मुंह के बंदर भी दर्पण में स्वयं की छवि देख कर खुश होते रहते हैं। उनके इस शौक के कारण आईआईटी चैन्नई की छात्राओं के सामने मुसीबत खड़ी हो गई है। वहां के महिला छात्रावास में बंदरों की एक टोली ने अपना बसेरा बना लिया है। कभी-कभी छात्राएं जल्दबाज़ी में बाथरूम में घुस कर दरवाज़ा बंद करती हैं तो पाती हैं कि वहां पहले से एक-दो बंदर दर्पण में स्वयं को मुंह चिढ़ाते खड़े हैं!

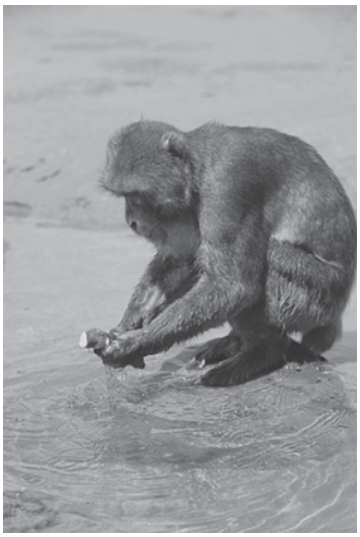

बंदर जैसे उन्नत जंतु सहयोग और संघर्ष दोनों स्थितियों में कल्पनाशीलता का उपयोग करते हैं। चिम्पैंज़ी शिकार के दौरान सहयोग करते हुए दांवपेंच रचते हैं। उनका शिकार वेर्वेट (अफ्रीका का एक बंदर) यदि छुटकारा पाने के लिए किसी पेड़ पर चढ़ जाता है तो चिम्पैंज़ी यह अनुमान लगाते हैं कि वह उस पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगाते हुए कहां से निकल भागने की कोशिश करेगा। फिर सारे पेड़ों के तने के पास एक-एक चिम्पैंज़ी खड़ा हो जाता है और एक सदस्य पेड़ पर चढ़कर शिकार का पीछा करता है। चिम्पैंज़ी पेड़ों के तनों को थपथपाते हुए अपने बच्चों को व्यवस्थित रूप से सिखाते हैं कि किन शाखाओं पर चढ़ना सुरक्षित होता है और किन पर खतरनाक।

इसी प्रकार, संघर्ष के अवसर पर सामने वाले को छकाने के लिए बंदर सफेद झूठ बोलने की नई-नई तरकीबें सोचते हैं। बंदरों के विशेषज्ञ राणा सिन्हा एक बार लाल मुंह के बंदरों में प्रेम-त्रिकोण का निरीक्षण कर रहे थे। दो नर मद में आई हुई एक मादा को वश में करने का जीतोड़ प्रयास कर रहे थे। अंत में मादा ने एक नर को पसंद कर लिया। दूसरा नर निराश होकर पेड़ पर चढ़ गया और उसने एक अजीब हरकत की। जीते हुए नर और मादा का मिलन शुरू होने से पहले उसने ऐसी आवाज़ लगाई जो आम तौर पर बंदर तेंदुए के आने की सूचना देने के लिए लगाते हैं। प्रेमी युगल भागकर अलग-अलग पेड़ों पर चढ़ गए और ये महाशयजी? वे आराम से पेड़ पर से नीचे उतर गए। यदि सचमुच तेंदुआ आया होता तो वह कभी नीचे नहीं उतरता, बल्कि पेड़ की सबसे ऊंची शाखा पर चढ़ गया होता। वह तो सरासर धोखाधड़ी कर रहा था!

उन्नत जंतुओं की इस क्षमता के कारण अनुकरण से फैलने वाले घटक जीन्स के समान जंतुजगत का हिस्सा बन गए हैं। जीन्स की हूबहू प्रतिलिपियां बनती हैं, किंतु कभी-कभी उनमें थोड़े बहुत परिवर्तन हो कर थोड़ी भिन्न प्रतिलिपियां बन जाती हैं। इसके चलते अधिक जी सकने वाली, फल-फूल सकने वाली प्रतिलिपियां चुनी जा कर नए जीन्स बनते जाते हैं। यही प्रक्रिया जंतुओं के व्यवहार में भी झलकती है।

इस प्रकार के नए व्यवहार की उत्पत्ति का एक किस्सा जापान की लाल मुंह की एक बुद्धिमान बंदरिया से सम्बंधित है। उसका नाम ईमो था। जापान के वैज्ञानिक कई दशकों से एक टापू पर रह कर इन बंदरों के एक झुंड का अध्ययन कर रहे हैं। अवलोकन को आसान बनाने के लिए वे समुद्र किनारे की रेत पर बंदरों के लिए आलू, गेहूं आदि भोजन रखते हैं। इन आलुओं के छिलकों पर मिट्टी लगी होती है और गेहूं के साथ रेत के कण मिल जाते हैं। ये बंदर इस परेशानी को वर्षों से सहते चले आ रहे थे। फिर उस झुंड में ईमो का जन्म हुआ जिसमें नई तरकीबें सोचने की बुद्धि थी। उसे सूझा कि यदि आलुओं को समुद्र के पानी में धोया जाए तो वे साफ हो जाते हैं। यदि गेहूं को पानी पर तैराया जाए तो वे तैरते हैं किंतु रेत के कण डूब जाते हैं। धीरे-धीरे अन्य बंदर उसकी नकल करने लगे और झुंड में यह व्यवहार फैलने लगा। पहले छोटी मादाओं ने नकल करना शुरू किया, फिर छोटे नरों ने और अंत में वयस्क मादाओं ने। किंतु वयस्क नरों ने एक अबला की नकल करने से साफ मना कर दिया और वे मिट्टी और रेत खाते-खाते मर गए!

ईमो की यह तरकीब ज्ञान युग की शुरुआत भर है। प्रभावशाली भाषा के बल पर मानव व्यवहार को ज्ञानसाधना का साथ मिल जाने के कारण मनुष्य का ज्ञान-भंडार तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। जंतुओं का वस्तुविश्व तो बिलकुल सीमित है, किंतु मनुष्य ने उसे अनाप-शनाप बढ़ा लिया है। मनुष्य ने गहराई से विचार करके कई कृत्रिम वस्तुएं बनाना और उनका उपयोग औज़ारों के रूप में करना सीख लिया है। इसके फलस्वरूप एक ओर जहां उसकी संकल्पना, उसका ज्ञान विकसित होता रहता है, वहीं इस ज्ञान भंडार के साथ-साथ कृत्रिम वस्तुओं का भंडार भी बढ़ता जाता है।

जीन्स और व्यवहार घटकों के समान ही औज़ारों की भी नकल होती जाती है। ऐसी नकल करते समय उनमें परिवर्तन होते जाते हैं, उनमें से नए निर्माण होते जाते हैं।

पृथ्वी अपने जन्म के समय चट्टानों से ढंकी थी (शिलावरण)। इसके बाद, वह पानी से ढंक गई (जलावरण) और इसके बाद आया हवा का आवरण यानी वातावरण। जहां शिलावरण, जलावरण और वातावरण मिलते हैं वहां जीवजगत फैलने लगा और जीवावरण बन गया। इसके बाद जंतु जगत, और विशेष रूप से मानव प्रजाति की उत्पत्ति हो कर ज्ञान का भंडार (बोधावरण) बढ़ गया और इसके साथ ही कृत्रिम वस्तुओं की संख्या में वृद्धि हो कर यंत्रों का युग (यंत्रावरण) आया। जानकारी और सूचना की प्रौद्योगिकी में तेज़ी से वृद्धि होने के कारण कम्प्यूटर और वायरलेस जैसे उपकरणों और उनसे सम्बंधित सॉफ्टवेयर के संगम से सायबरस्पेस में एक विश्व आकार ले रहा है जो इसी विकास का सबसे ताज़ा आविष्कार है।

आज दुनिया में जो कुछ हो रहा है, और आने वाले कल में होने वाला है, वह बोधावरण और यंत्रावरण की नई-नई उपलब्धियों से ही निर्धारित हो रहा है। सहयोग को बढ़ावा देने वाले मोबाइल फोन जैसे उपकरणों और अस्त्र-शस्त्रों जैसे संघर्ष को बढ़ावा देने वाले उपकरणों का निर्माण तेज़ी से हो रहा है। इसी के साथ जीएम फसलों से बनने वाली ऐसी नई खरपतवारों की आहट भी सुनाई पड़ रही है जिन पर मनुष्य का कोई नियंत्रण नहीं है।

नए युग में यदि मानव ने स्पर्धा और संघर्ष को लगातार बढ़ावा दिया तो भारी उत्पात हो कर सभी उन्नत जीवधारी नष्ट हो जाएंगे। किंतु बैक्टीरिया फिर भी बचे रहेंगे, और एक बार फिर विकास की यात्रा शुरू हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि सौभाग्य से सहयोग मज़बूत होता रहा तो हम विकास के अगले पड़ाव तक पहुंच सकेंगे और सारे विश्व को खुशहाल बना सकेंगे। इन सारी बातों की चर्चा हम आगामी दो लेखों में करेंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***

4. फिर से श्रीगणेश!

यदि संघर्ष को बढ़ावा देने वाली प्रवृत्तियों का बोलबाला रहा तो उन्नत जीवजगत का विनाश हो कर विकास की यात्रा का वर्तमान अध्याय समाप्त हो जाएगा, और यह यात्रा एक बार फिर बैक्टीरिया से शुरू होगी।

विकास यात्रा का मतलब समझने की क्षमता रखने वाली मानव प्रजाति स्वयं भी इसी प्रक्रिया की एक अनोखी उपज है। मनुष्य एक ऐसा जीव है जो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों की एक अजीब गुत्थी है। अन्य सभी जीवधारियों के समान

मनुष्य भी स्वार्थी है। किंतु चींटियों, मधुमक्खियों और हाथियों जैसी कुछ चुनिंदा प्रजातियों के समान समाज-प्रेमी भी है। इन जंतुओं के समाज आपसी सहयोग और समाज के लिए किए गए त्याग के कारण बने रहते हैं। मनुष्य के स्वभाव में भी आपसी सहयोग और निस्वार्थता की प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। किंतु समाज-प्रेमी जंतुओं के अलग-अलग समूहों में भी ज़ोरदार संघर्ष देखा जा सकता है। स्वयं के समूह के सदस्यों के प्रति अपनापन, किंतु उसी प्रजाति के अन्य समूहों के प्रति उदासीनता, और कभी-कभी दुश्मनी तक दिखाई देती है।

मनुष्य के स्वभाव में भी अपनापन-परायापन, स्वजनों के लिए प्रेम, परायों के लिए द्वैष भावना पाई जाती है। मानव समाज में भी जहां अपनों से सहयोग को अच्छा माना जाता है, वहीं परायों के प्रति दुर्व्यवहार और क्रूरता को प्रोत्साहित किया जाता है। समाज-प्रेमी जंतुओं के समूहों के भीतर भी आपस में स्पर्धा चलती रहती है। इस स्पर्धा के चलते मोर जैसे पक्षी अपने ही समूह के अन्य सदस्यों को नीचा दिखाने के लिए विशाल पिच्छों का बोझ ढोते हुए अपनी शान बघारते हैं। इस दिखावे से यह संदेश दिया जाता है कि हम जितना बेमतलब का खर्च कर सकते हैं उतने ही हम शक्तिशाली हैं।

मनुष्य ने अपनी बुद्धि के बल पर कृत्रिम वस्तुओं का विशाल भंडार बना कर इस दिखावे को एक अलग ही स्वरूप दे दिया है। मिस्र के बादशाहों की शान को उनके मरने के बाद भी बनाए रखने के लिए पिरामिडों का निर्माण किया गया। इनमें से एक है गिज़ा का पिरामिड जिसे बनाने के लिए एक समय में दस-दस हज़ार तक मज़दूर काम करते थे।

दूसरी ओर, इसी बुद्धि के बल पर मनुष्य संसार में होने वाली घटनाओं को भी समझ सकता है, दूरदृष्टि से, विवेक से काम ले सकता है। यही कारण है कि मानव समाज में अनाप-शनाप खर्च करके शान दिखाने के साथ-साथ सादा जीवन जीने, संसार पर अनावश्यक बोझ न डालने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। इनमें से कौन-सी प्रवृत्ति कब प्रकट होती है यह व्यक्ति-व्यक्ति और संदर्भ-संदर्भ के अनुसार बदलता रहता है। जिस प्रकार मानव समाज की धारणाओं में परिवर्तन होते गए हैं उसी प्रकार ये संदर्भ भी बदलते रहते हैं। दस हज़ार वर्ष पूर्व मनुष्य बिखरे हुए, छोटे-छोटे समूहों में रहते थे। हर समूह में सहयोग की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी, प्रकृति पर मानव का कोई असर भी नहीं पड़ा था, उसके पास यह क्षमता ही नहीं थी कि वस्तुओं का बड़ा संचय बना कर शान दिखाए।

इसके विपरीत, आज अरबों मनुष्यों का एक विश्वव्यापी समूह बन गया है, जिसके फलस्वरूप परस्पर सहयोग का महत्व कम हो गया है। स्पर्धा की पराकाष्ठा हो गई है, वस्तुओं के संचय की कोई सीमा नहीं रह गई है, औरों के सामने अपने धनबल का प्रदर्शन करना ही जीवन का ध्येय बन गया है। इन अरबों मनुष्यों की संख्या का और उनकी असीमित वस्तु संचय प्रवृत्ति का प्रकृति पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है और यही प्रभाव प्रकृति के भविष्य के विकास की दिशा निर्धारित करने वाला है।

एक ओर जहां अनियंत्रित उत्पादन और गलाकाट स्पर्धा के पक्ष में कसीदे पढ़े जा रहे हैं, वहीं सॉफ्टवेयर, सूचना का अधिकार, वास्तविक प्रजातंत्र के समान सहयोग पर ज़ोर देने वाले आंदोलन भी प्रारंभ हो रहे हैं।

मानव का प्रकृति पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ेगा, जैव-विकास को हम किस मोड़ पर ले जाएंगे यह इस पर निर्भर रहेगा कि इन दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों में से कौन-सी अधिक हावी होगी। कम से कम वर्तमान में तो गलाकाट स्पर्धा और प्रकृति की खुली लूट-खसोट का पलड़ा भारी होता दिख रहा है। यह रास्ता हमें सारे उन्नत जीवजगत के विनाश की ओर ले जा रहा है। वहीं, दूसरा, सहयोग का रास्ता हमें विकास के अगले, अधिक उन्नत चरण तक ले जाएगा। इस लेख में हम अवनति की संभावना पर विचार करेंगे और अगले, यानी इस लेखमाला के अंतिम लेख में उन्नति की संभावनाओं की चर्चा करेंगे।

प्राकृतिक संसाधनों के लिए विभिन्न गुटों के बीच होने वाली स्पर्धा और उसके फलस्वरूप होने वाला प्रकृति का विनाश मानव इतिहास में समय-समय पर देखा जा सकता है। पचहत्तर वर्ष पूर्व एशिया और अफ्रीका के प्राकृतिक

संसाधनों पर कब्ज़ा जमाने के लिए इंग्लैंड-अमेरिका-फ्रांस-रूस के विरोध में जर्मनी-इटली-जापान के संघर्ष के कारण दूसरा महायुद्ध फूट पड़ा था। इस महायुद्ध के अंत में जापान पर परमाणु बम से हमला हुआ। किंतु फिर भी मानव प्रजाति आज प्राकृतिक संसाधनों की कभी न मिटने वाली अपनी भूख को बढ़ावा दे रही है।

अतः एक महायुद्ध से संघर्ष का समाप्त हो जाना असंभव था। इसीलिए इंग्लैंड-अमेरिका-फ्रांस के खिलाफ रूस-चीन के संघर्ष में से वियतनाम युद्ध की शुरुआत हुई। इस लड़ाई में जैविक हथियारों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया और वियतनाम की समृद्ध प्राकृतिक सम्पदा को अत्यधिक हानि पहुंचाई गई।

इसके बाद यह विचारधारा जड़ पकड़ने लगी कि मानव को प्रकृति के साथ संयत व्यवहार करना चाहिए। किंतु यह विचार उन अमेरिकी धनबलियों को मंज़ूर नहीं था जिनके जीवन का सर्वोच्च मूल्य बेलगाम आर्थिक उत्पादन ही है। अमेरिका के राष्ट्रपति बुश ने तो रियो डी जेनीरो में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में घोषणा कर दी कि अमेरिका की जीवन शैली से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जाएगा। फिर इसी सिलसिले में इराक के तेल भंडारों पर शिकंजा मज़बूत करने के लिए अमेरिका ने उस देश पर झूठे आरोप लगा कर हमला कर दिया। इसी समय ऐसे प्रमाण मिल रहे थे कि ऊर्जा के अत्यधिक उपयोग के कारण विश्व का तापमान बढ़ रहा है। किंतु इराक की लड़ाई में तेल के भंडारों में हुए भयानक अग्निकांड के कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों में अत्यधिक वृद्धि हुई। ये गैसें धरती को गर्म करने के लिए ज़िम्मेदार हैं।

रूस के कमज़ोर हो जाने के कारण अमेरिकी धनबलियों को यह गलतफहमी हो गई थी कि अब अमेरिका का वर्चस्व अनंत काल तक बना रहेगा, किंतु चीन अब उन्हें होश में ला रहा है। अमेरिका के समान ही प्रकृति पर हमला करके चीन भी आर्थिक उत्पादन करने का प्रयास कर रहा है। वह दिखा रहा है कि दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका केवल अमेरिका और अन्य पाश्चात्य देशों के चारागाह नहीं हैं, हम भी उनकी प्रकृति के शोषण के अधिकारी हैं। चीन की अर्थव्यवस्था अमेरिका की अर्थव्यवस्था के बराबर आने की राह पर है, चीन के पास पर्याप्त हथियार हैं, परमाणु बम भी हैं। आज नहीं तो कल, संसार के प्राकृतिक संसाधनों पर पकड़ जमाने के लिए चल रही स्पर्धा के कारण अमेरिका और चीन के बीच संघर्ष होना अवश्यंभावी है। ऐसे युद्ध में परमाणु बमों का अनाप-शनाप उपयोग होगा और संसार जल कर राख हो जाएगा।

ऐसा हुआ तो सारा उन्नत जीवजगत नष्ट हो जाएगा, किंतु क्या प्राचीन जीवधारी भी समाप्त हो जाएंगे? नहीं। हमें इस बात का आभास भले न हो, किंतु आज पृथ्वी तल के वास्तविक शासक तो साधारण बैक्टीरिया ही हैं। वे बहुत सहनशील हैं और जिन परिस्थितियों में उन्नत जीवधारी जीवित नहीं रह सकते ऐसी परिस्थितियों में खुशी से फल-फूल रहे हैं। पृथ्वी के गर्भ की गहराइयों में, चट्टानों की दरारों में वे रासायनिक ऊर्जा का उपयोग करते हुए जी रहे हैं। परमाणु युद्ध के बाद यदि पूरे संसार में रेडियोधर्मी किरणें भर जाएं तो भी वे ऐसे कई स्थानों में सुरक्षित रहेंगे। शायद करोड़ों वर्ष तक ऐसा आभास होता रहेगा कि पृथ्वी तल पर कोई जीवन नहीं है, किंतु फिर एक बार जैव विकास की यात्रा धीरे-धीरे शुरू होगी, उन्नत जीवधारी फिर से पृथ्वी पर झांकने लगेंगे। हो सकता है कि कई अरब वर्ष बाद आत्मज्ञान वाले चिम्पैंज़ी और मानव जैसे जंतु भी विचरने लगें। ***(स्रोत फीचर्स)***

5. अंतरिक्ष में जीवन की बहार आने दो

जैव विकास की यात्रा सहयोग की सफलता की कहानी है। यदि इस उज्ज्वल परम्परा को सहेजें, तो मानव प्रजाति विकास के अगले चरण तक पहुंच सकेगी, सारे अंतरिक्ष में जीवजगत की बहार ला सकेगी।

मेरी दो नातिनें मुझे हमेशा की तरह बॉलीवुड का सबसे लोकप्रिय प्रचलित लुंगी डांस सिखा रही थीं। नाचते-नाचते मेरे कान खड़े हो गए क्योंकि वे गा रही थीं, "घर जाके गूगल कर लो, मेरे बारे में विकिपीडिया में पढ़ लो।" इसका

मतलब यह था कि मैं पंद्रह वर्ष पूर्व मेनार्ड स्मिथ द्वारा की गई भविष्यवाणी के दसवें परिवर्तन का गवाह बन रहा था। स्मिथ ने यह दिखा दिया था कि पहले नौ परिवर्तनों में जीवजगत अधिक से अधिक सूचनाओं का उपयोग करने लगता है, अधिक सूचना-प्रचुर (जानकारी से भरपूर) बनता जाता है। इसके बाद उन्होंने यह सुझाव दिया था कि दसवें परिवर्तन में सारा मानवी ज्ञान सब तक पहुंचने लगेगा। ये सब परिवर्तन सहयोग के माध्यम से ही संभव हो पाते हैं। आखिर जीवन भी तो विविध प्रकार के अणुओं के सहयोग से ही पृथ्वी पर अवतरित हुआ। आर्किया और सायनोबैक्टीरिया के सहयोग से वनस्पतियों की उन्नत कोशिकाओं का निर्माण हुआ। वनस्पतियों और फफूंदों के सहयोग से जीवजगत ज़मीन पर आ सका। परागण के लिए वनस्पतियों के साथ सहयोग का हाथ बढ़ाते हुए मधुमक्खियों जैसे सामाजिक जीवों का विकास हुआ। एक-दूसरे को मकरंद के भंडारों की जानकारी देने के लिए मधुमक्खियों ने नृत्य भाषा का आविष्कार किया। इससे आगे बढ़कर मानव ने संज्ञान भंडार के अनोखे साधन यानी भाषा का विकास किया।

मानवीय भाषा की यह उत्पत्ति मेनार्ड स्मिथ का नौवां परिवर्तन था। इसमें से निकला एक अनोखा संसाधन, विद्याधन, जो दिल खोलकर लुटाने पर भी रत्ती मात्र कम नहीं होता। स्मिथ का मत था कि इस विद्याधन का विकास होते-होते आज जो नया सूचना और संचार तंत्र उपलब्ध हो गया है, उसमें से दसवां परिवर्तन उपजेगा जिसमें मानव का सारा का सारा ज्ञान भंडार सभी मनुष्यों को बहुत सरलता से उपलब्ध हो जाएगा।

इसका मतलब यह नहीं है कि मानव के ज्ञान भंडार में सब कुछ गणित या भौतिकी के समान वस्तुनिष्ठ और तार्किक है। विशेष रूप से आजकल आर्थिक व्यवहार, सामाजिक संरचना आदि के बारे में ऐसा बहुत कुछ कहा जा रहा है जो एकतरफा और गलत दिशा में ले जाने वाला है। इसके अनुसार मानव केवल स्वार्थी है, वह जो भी करता है वह केवल धन कमाने के लिए करता है। पेट-पूजा और बाज़ार-पूजा ही मानव जीवन के एकमात्र कर्तव्य हैं।

विकिपीडिया इस दसवें परिवर्तन का एक अंग है। इसके माध्यम से मानव का संपूर्ण ज्ञान भंडार सबके लिए बिना मूल्य खोल दिया गया है। उपरोक्त पेट-पूजकों ने तो भविष्यवाणी कर दी थी कि विकिपीडिया एक बेवकूफी से भरा उपक्रम है। उनके मुताबिक इसकी असफलता निश्चित है क्योंकि इसमें भागीदारी करने वालों को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ नहीं होता।

विकिपीडिया एक ऐसा अनोखा ज्ञान भंडार है जो कम्प्यूटर जगत के द्वारा बनाए गए वर्ल्ड-वाइड-वेब (विश्व व्यापी जाल) पर सवार है। यह सबके लिए निशुल्क उपलब्ध है और इसमें कोई भी विज्ञापन स्वीकार नहीं किए जाते। इस प्रकार का विद्याधन सबको उपलब्ध होने की संभावना से सामना होने पर विद्या का व्यापार करने वाले डर गए। उन्होंने जीतोड़ प्रयास किया कि लोगों को ऐसी कोई चीज़ बिना मूल्य न मिले। उन्हें लगता है कि सारे के सारे विद्याधन पर किसी न किसी का कॉपीराइट ज़रूर होना चाहिए। किंतु समाज में ऐसे लोग तो होते ही हैं जिन्हें पैसे का लालच नहीं होता।

ऐसे ही एक प्रतिभाशाली सूचना विषेशज्ञ वॉर्ड कनिंगहैम ने 'विकी' नाम का सॉफ्टवेयर बनाया। इसका उपयोग करते हुए इंटरनेट तक पहुंचने वाला कोई भी व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति के द्वारा रचे गए ज्ञान-साहित्य में परिवर्तन कर सकता है, उसकी गलतियों को ठीक कर सकता है। इस प्रणाली का उपयोग करके सब एक-दूसरे की मदद से नए-नए साहित्य का निर्माण कर सकते हैं। कनिंगहैम ने निस्वार्थ भावना से अपना विकी-ज्ञान सारे संसार को बिना मूल्य उपलब्ध करा दिया। इस मुक्त ज्ञानकोश के कर्ता-धर्ताओं ने निर्णय लिया कि सारे आम लोगों को इस अच्छे काम में योगदान देने का निमंत्रण दिया जाए। शुरुआत में

गलतियां होंगी, किंतु दूसरों की गलतियां खोजना सभी को अच्छा लगता है। तब हम विषेशज्ञों को आमंत्रित करेंगे कि जनसामान्य के लेखन की गलतियां ढूंढो, उन्हें ठीक करो। विकी प्रणाली में इस प्रकार की गलतियां तुरंत-फुरंत ठीक की जा सकती हैं। इस सर्वसमावेशी विकिपीडिया उपक्रम को इतना व्यापक समर्थन मिला है कि ज्ञान का यह भंडार दिन-ब-दिन समृद्ध हुआ है और होता जा रहा है। वर्तमान में उसमें कई भारतीय भाषाओं सहित 287 भाषाओं में पांच करोड़ लोगों के योगदान से लगभग हर विषय पर कुल साढ़े तीन करोड़ लेख उपलब्ध हैं।

इंटरनेट पर विकिपीडिया जैसे ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर आंदोलन के सर्वसमावेशी, स्वयंस्फूर्त, आर्थिक लाभ की कामना न करने वाले, केवल बहुजनहिताय के लिए काम करने वाले अन्य कई उपक्रम भी सफल हो चुके हैं। यह स्पष्ट है कि संकुचित मनोवृत्ति वाले और सामाजिक सरोकार वगैरह बातों को बकवास कहने वाले उन अर्थशास्त्रियों के ये विचार बिलकुल गलत हैं कि मानव केवल अपने स्वार्थ के लिए, धन के लिए प्रयास करता रहता है, और सब चीज़ों की खरीद-फरोख्त केवल बाज़ार के माध्यम से ही की जानी चाहिए। भविष्य में संसार स्वार्थ, स्पर्धा, संघर्ष की जकड़न से बाहर निकल सकेगा। यह मान लिया जाएगा कि बिजली और पानी की अधिक से अधिक बरबादी करने, प्लास्टिक के कूड़े से पटे हुए घूरों को सहेजने, पागलों की तरह गोरेपन के मलहम चुपड़ कर अपनी ही त्वचा पर अत्याचार करने में कोई समझदारी नहीं है। तब हम सारी मानव प्रजाति को काव्य, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, कला, खेलकूद और हास्य का भरपूर आस्वाद लेने का अवसर देने वाली एक समृद्ध जीवन शैली की दिशा में बढ़ सकेंगे।

फिर अपने विश्व के बारे में हमारी सोच को एक नई दिशा मिल सकेगी। अब यह स्पष्ट हो गया है कि जीवन में असीमित लचीलापन है। कुछ वर्षों पहले फ्रीमैन डायसन नामक वैज्ञानिक ने यह सवाल उठाया था कि यदि ऐसा है तो फिर जीवन को केवल कुछ ही ग्रहों तक क्यों सीमित रहना चाहिए, उसे अंतरिक्ष में बने रहने में क्या कठिनाई है?

यदि जीवधारियों को अंतरिक्ष में जीवित रहना हो तो तीन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा - बहुत अधिक ठंड, पूर्ण निर्वात और गुरुत्वाकर्षण की अनुपस्थिति। किंतु सारे वैज्ञानिक प्रमाणों की समीक्षा करके डायसन ने दिखा दिया कि इन तीनों समस्याओं से जूझ सकने वाले जीवधारी हम कल्पनासृष्टि में तो बना ही सकते हैं।

नए-नए जीवधारियों का निर्माण करने की मानव की क्षमता लगातार बढ़ रही है। डायसन का विचार है कि एक-न-एक दिन हम ऐसे जीवधारी बना सकेंगे जो अंतरिक्ष में न केवल जीवित रह सकेंगे बल्कि प्रजनन भी कर सकेंगे। यही नहीं, उनके अनुसार ऐसे जीवों का निर्माण करके सारे अंतरिक्ष को जीवनमय बनाना मानव प्रजाति का कर्तव्य है। ऐसे जीवधारी अंतरिक्ष में पहुंच जाएंगे तो उनकी विकास यात्रा अपने आप चलती रहेगी और उनकी विविधता फैलती रहेगी। उसमें मानव के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होगी। यह विकास यात्रा का ग्यारहवां परिवर्तन हो सकता है।

यह एक अटल सत्य है कि विकास यात्रा के दौरान मानव प्रजाति कभी न कभी पूरी तरह नष्ट हो जाएगी। आज हमारी पृथ्वी पर प्रजातियों की जितनी संख्या है उनसे सौ गुना प्रजातियां नष्ट हो चुकी हैं। मानव प्रजाति भी अमरपट्टा ले कर तो आई नहीं है, उसे भी एक दिन काल के गाल में समा जाना ही है। किंतु उससे पहले यदि मानव ने फ्रीमैन डायसन की कल्पना की उड़ान के अनुरूप सारे अंतरिक्ष में जीवन को फैलाने की शुरुआत कर दी तो वह इस विश्व पर अपनी विशेष छाप ज़रूर छोड़ जाएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***